'योगमाया' शक्ति की यवनिका में छिपे हुए हैं। अर्जुन के प्रश्न का प्रयोजन इसी कोटि के मनुष्यों का कल्याण करना है। उत्तम भक्त केवल इस बात की चिन्ता नहीं करता कि उसे ज्ञान हो; उसे तो यही चिन्ता रहती है कि किस प्रकार सम्पूर्ण मानवजाति ज्ञान से आलोकित हो। अर्जुन वैष्णव के योग्य अहैतुकी करुणा से प्रेरित होकर जनसाधारण को यह ज्ञान सुलभ करा रहा है कि श्रीभगवान् सर्वव्यापक हैं। उसने श्रीकृष्ण को **योगिन्** सम्बोधित किया, क्योंकि श्रीकृष्ण योगमाया के अधीश्वर हैं और उसी से साधारण मनुष्य के सामने यथासमय प्रकट-अप्रकट हुआ करते हैं। जिनके हृदय में श्रीकृष्ण के लिए प्रेम नहीं है, वे साधारण मनुष्य श्रीकृष्ण का निरन्तर स्मरण नहीं कर सकते; वे लौकिक चिन्तन करने को बाध्य हैं। इसलिए अर्जुन ऐसी उपयुक्त पद्धति पर विचार कर रहा है, जिससे विषयी मनुष्य भी अनायास निरन्तर भगवच्चिन्तन कर सकें। विषयी मनुष्य श्रीकृष्ण के दिव्य स्वरूप का चिन्तन नहीं कर सकते, इसलिए उन्हें परामर्श दिया जाता है कि जिस-जिस प्राकृत वस्तु पर चित्त जाय, उस-उसके भौतिक रूप में वे श्रीकृष्ण की अभिव्यक्ति को देखने का अभ्यास करें।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्।।१८।।

विस्तरेण=विस्तार से; **आत्मनः**=अपनी; **योगम्**=योगशक्ति; **विभूतिम्**=ऐश्वर्यों को; **च**=भी; **जनार्दन**=हे नास्तिकों के हन्ता; **भूयः**=फिर; **कथय**=कहिये; **तृप्तिः**=तृप्ति; **हि**=निःसन्देह; **शृण्वतः**=श्रवण करते हुए; **न अस्ति**= नहीं होती; **मे**=मेरी; **अमृतम्**=(आपके वचन रूपी) सुधा का।

अनुवाद

हे जनार्दन! अपनी योगशक्ति और विभूतियों को फिर विस्तारपूर्वक कहिये, क्योंकि आप के अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती।।१८।।

तात्पर्य

नैमिषारण्य के ऋषियों ने भी श्रील सूत गोस्वामी से इसी प्रकार का निवेदन किया है:

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोक विक्रमे।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे।।

''उत्तमश्लोक श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाकथा को निरन्तर सुनते रहने पर भी तृप्ति नहीं होती, श्रवण की उत्कण्ठा नित्य नूतन बनी ही रहती है। रसिकजन तो वस्तुतः पद-पद पर भगवत्कथामृत का आस्वादन करते हैं।'' अर्जुन भी भगवान् श्रीकृष्ण की कथा सुनने को अतिशय उत्कंठित है। वह विशेष रूप से उनकी सर्वव्यापकता और परम ईश्वरता के तत्त्व को जानना चाहता है।